'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ४० | वाराणसी, शनिवार, ४ अप्रैल, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

जामनगर (हालार) २७-११-'५८

अहिंसा की शक्ति से ही दुनिया टिक सकेगी

आज सारी दुनिया में कशमकश चल रही है, खींचातानी चल रही है। एक ओर से कम्युनिज्म अपना काम कर रहा है, दूसरी ओर से लोकशाही सत्ताएँ काम कर रही हैं, तीसरी ओर सैनिकशाही खड़ी है और अब हम लोग अपने इस देश में लोकनीति स्थापित करने का एक चौथा ही प्रयत्न कर रहे हैं।

सबका आधार : सेवा

कम्युनिज्म का उद्देश्य बहुत ही अच्छा है! कम्युनिस्ट चाहते हैं कि सारा समाज सुखी हो और सुख में विघ्न करनेवाले घटें। समाज का दुःख मिटे और अन्त में राजसत्ता का भी लोप हो जाय। इतना महान् उद्देश्य वे अपने सामने रखते हैं और इसीके लिए दुनिया के सारे मानव-समाज से अपील करते हैं। अन्य वादों की संकुचित विचार-पद्धति कम्युनिज्म में नहीं रही। दुनिया को साम्यवाद से यह एक बहुत बड़ी बात मिली। लेकिन अन्ततः सत्ता का सर्वथा विलय चाहते हुए भी वे मानते हैं कि आज तो सत्ता की अत्यन्त आवश्यकता है। आज तो वह बहुत ही मजबूत होनी चाहिए। इस तरह वे ऐसी परस्परविरोधी बात मानते हैं। यही कारण है कि आज सारी दुनिया ने अत्यधिक शस्त्रबल संगठित किया है। लोकतांत्रित कहलानेवाले इंग्लैण्ड, अमेरिका जैसे देश भी कम्युनिस्टों से भय खाकर शस्त्र-सज्जित होना चाहते हैं। उन्होंने शस्त्रशक्ति का अत्यधिक विकास किया है, खास कर अमेरिका ने। फिर जहाँ लोकतंत्र चलता था, वहाँ तो अब एक तीसरी ही बात चल पड़ी है। वह यह कि किसी व्यक्तिविशेष के हाथ में अगर सेना का आदमी हो, तो उसके हाथ में सारी सत्ता सौंप दी जाय। इसे ही सैनिक शासन कहा जाता है। फिर वह (सैनिक) शासन भले ही लोक-सम्मति का नाटक करे, पर कहलाया जायगा सैनिक शासन ही। आज फ्रान्स, पाकिस्तान, सूडान आदि देशों में सैनिक शासन चल रहा है। सैनिक-शाही में एक व्यक्ति के हाथ में सत्ता होने पर भी उसका आधार सेना पर है और लोकशाही का भी, जो कि बहुमत का शासन कहा जाता है, आधार सेना पर है। इस प्रकार लोकतंत्र, सैनिकशाही और साम्यवाद तीनों सेना का ही आधार रखते हैं, जब कि हम लोग भारत में एक नया प्रयोग करना चाहते हैं।

भय से शान्ति नहीं

हम 'सर्वोदयवाले' चाहते हैं कि जिस काम को लोग भय से करना चाहते हैं, उसे हम प्रेम से करें। अन्य सभी वादों के उद्देश्य तो अच्छे हैं, लेकिन वे भय के आधार पर ही लोकहित साधना चाहते हैं। वे समझते हैं कि भय में भी एक शक्ति है। उसका उपयोग करने से समाज में व्यवस्था निर्माण होगी, जिससे समाज सुखी होगा, उसका हित होगा। इस तरह वे दण्डशक्ति और भयशक्ति को बड़ी ही महत्त्व की चीज मानते हैं और उसका उपयोग करना अपना अधिकार एवं कर्तव्य बताते हैं। इसके विपरीत हम लोग प्रेम से ही काम लेना चाहते हैं। हम उनसे कहते हैं कि इस तरह भय, दण्ड शक्ति या हिंसाशक्ति लोकहित साधने की सोचते हैं, तो उस हिंसा के विरोध में दुनिया में प्रतिहिंसा खड़ी हो जाती है और भय से ही भय बढ़ने लगता है। इस मार्ग से शान्ति-स्थापना की संभावना भी नहीं की जा सकती।

इसके विपरीत सेना के आधार पर लोकहित साधने की बात कहनेवाले पक्ष हम पर भी यह आक्षेप किया करते हैं कि 'आप प्रेम की बातें करते हैं और मानव प्रेम को समझता है। यह सब तो ठीक है, लेकिन उसका असर बहुत ही कम पड़ता है और बिलम्ब से पड़ता है। इसलिए तुरन्त काम करना हो, तो हिंसाशक्ति, दण्डशक्ति के सिवाय दूसरा कोई रास्ता ही नहीं हो सकता। भय से जो काम एक दिन में हो जाता है, वह प्रेम से शायद वर्षों में भी न हो सकेगा। पाकिस्तान में अयूबखाँ के द्वारा दर्शाये हुए भय का चमत्कार देख ही लिया गया। उसका आर्डर निकलने के साथ ही दूध में पानी मिलाना बन्द हो गया। इसके विपरीत प्रेम का सन्देश सुनानेवाले आज तक बुद्ध, ईसा, महात्मा गांधी कितने ही हो गये, फिर भी हम जैसे के तैसे रह गये। आपकी बातें सुनकर लोगों के कान तृप्त अवश्य हो सकते हैं, लेकिन क्या उनके हाथों को भी कुछ प्रेरणा मिल पाती है?' वास्तव में सर्वोदय चाहनेवाले हम लोगों को इसका जवाब देना होगा। हमें यह सिद्ध कर दिखाना होगा कि भय-शक्ति के बिना सिर्फ प्रेमशक्ति से ही दुनिया का काम चल सकता है। हमें समाज का मानस इस तरह बनाना होगा कि जैसे उस पर भय का असर होता है, वैसे ही, बल्कि उससे भी

अधिक प्रेम का असर हो और वह दृढ़ हो। यह भी सिद्ध कर दिखाना होगा कि भय का तनिक भी असर नहीं होता। यदि आप बच्चों को मार-पीटकर समझाना चाहें, तो वे कभी नहीं समझ सकेंगे। अगर प्रेम से समझायें, तो समझ जायें। हमें लोक-मानस भी इसी तरह बनाना होगा। प्रेम का काम करने के लिए यदि भय की ही आवश्यकता होगी, तो अहिंसा जन-समाज की चीज न रह जायगी। वह व्यवहार की चीज न रह जायगी, केवल पुस्तकों की ही चीज बनी रहेगी।

हम लोग हिन्दुस्तान में यह मानने की हिम्मत करते हैं कि चूँकि विज्ञान-युग आ गया है, इसलिए अब हिंसा चल नहीं सकती। उससे तो मानव जाति का विनाश ही हो जायगा। इसीलिए आज सारे समाज को, दुनिया को अहिंसा की भूख लगी हुई है। मेरी यही मान्यता है और इसी मान्यता के आधार पर मैं यह कह रहा हूँ। बुद्ध, ईसा जैसों के बहुत कुछ करने पर भी जो नहीं बन पाया, उसे यह विज्ञान-युग कर दिखायेगा। आज विज्ञान ने ऐसी भयानक स्थिति पैदा कर दी है कि या तो प्रेम की शक्ति पैदा करो या सारी मानव-जाति का मिट जाना स्वीकार करो। इसलिए मैं अत्यन्त निर्भय होकर विश्वास-पूर्वक कह रहा हूँ कि इस युग में प्रेम की शक्ति पैदा होकर रहेगी। यह जमाने की वाणी है, युग की माँग है। मैं तो यह कहने के लिए निमित्तमात्र हूँ। समय कह रहा है कि प्रेम को व्यापक बनाओ।

प्रेम का सामूहीकरण

यहाँ इतनी सारी जनता इसलिए एकत्र हुई है कि मैं त्याग की बात बताता हूँ। त्याग भारत की जनता को अत्यन्त प्रिय है। भले ही वह भोग में पड़ी रहे, लेकिन अगर कोई भोगपरायणता की बात सिखाये, तो वह उसे कभी नहीं सुनती, उसे निकाल बाहर कर देती है। त्याग, प्रेम, सहानुभूति, धर्म आदि की बात ही चाव से सुन सकती है। लेकिन इस जमाने में इनके सुनने मात्र से पाप नष्ट होंगे। यह सुनने की बात इस जमाने की नहीं, पुराने जमाने की है। उस समय भोग का प्रवाह कम था, जमीन अधिक थी और समाज सात्त्विक था। इसलिए उन दिनों सुनने मात्र से काम चल जाता था। किन्तु आज भोग-प्रवाह इतना बढ़ गया है कि विचार सुनने और पसंद पड़ने मात्र से काम न होगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपमें से जिन्हें यह विचार पसंद हो, वे आगे आयें और प्रेम को सामूहिक रूप देने के लिए प्रस्तुत हो जायँ।

कोई भी यह नहीं कहेगा कि हमें हिंसा प्रिय है। फिर भी हिंसा में एक विशेष गुण है। हिंसा का सामूहिक संकल्प हो सकता है। हिटलर पचास लाख सैनिकों को हुक्म देता और वे दूसरे राष्ट्र पर टूट पड़ते थे। अब हमें अहिंसा के बारे में भी यह सिद्ध कर दिखाना चाहिए कि इसमें भी सामूहिक संकल्प हो सकता है। जब हम इसे कर पायेंगे, तभी इस विज्ञान-युग में मानव की शक्ति प्रकट होगी। अहिंसा के बारे में अभी तक सामूहिक संकल्प नहीं हो पाया है। सभी जगह व्यक्तिगत प्रयोग ही होते रहे हैं। त्याग के सामूहिक प्रयोग के लिए लोग तैयार नहीं हुए, पर भोग का सामूहिक प्रयोग हुआ है। हिंसा के सामूहिक संकल्प की बात अमेरिका, रूस, चीन, जर्मनी, फ्रांस और अन्य देशों ने भी सिद्ध कर दिखायी है। अब भारत को ही यह कर दिखाना है कि अहिंसा का भी सामूहिक संकल्प हो सकता है। इसीलिए मैंने सर्वोदय-पात्र निकाला है। इसीसे यह परीक्षा हो जायगी कि अहिंसा का सामूहिक प्रयोग हो सकता है या नहीं? यदि आप लोग मेरा व्याख्यान सुनकर दूसरे ही दिन से पूरे जाम-नगर में घर-घर सर्वोदय-पात्र की स्थापना करते एवं अखबार में इसकी खबर भेज देते, तो मैं समझता कि आप अहिंसा का कक-हरा सीख गये। अभी आपके लिए उस विषय का साहित्य पढ़ना तो बाकी ही रहेगा, फिर भी यह कहना होगा कि आपका उस विद्या में प्रवेश हो गया। इस तरह कोई सामूहिक काम कर सारे भारत को आप लोग प्रेम का सन्देश दे सके, तो एक शक्ति का दर्शन होगा। आगे चलकर वही शक्ति विकसित होकर अन्तर-राष्ट्रीय क्षेत्र में भी समस्याओं के हल का उपाय दिखलायेगी। इसलिए यह एक बहुत साधारण, पर बड़े मार्के की चीज है।

अहिंसा-शक्ति के लिए सामूहिक संकल्प

वैसे देखें, तो हिंसा में शक्ति ही क्या है? दण्डशक्ति निखालिस हिंसा नहीं है। उसके साथ लोकमत भी जुड़ा रहता है, इसलिए वह जरा फीकी हिंसा कहलाती है। वह दण्डशक्ति प्रत्येक व्यक्ति पर कर बैठाती है और उसका उपयोग लोकहित के कामों में करती है। आज की सरकार भी यही करती है। सर्वोदय-पात्र भी इसी कर की जगह पर है। फर्क केवल इतना है कि कर जहाँ अनिवार्य हुआ करता है, वहाँ यह सर्वोदय-पात्र ऐच्छिक है। कर अनिवार्य होने से लोग उससे युक्ति-प्रयुक्ति कर बचने की कोशिश करते हैं। किंतु सर्वोदय-पात्र ऐच्छिक होने से इसमें सभीको दाखिल होना चाहिए। इसलिए यह सर्वोदय-पात्र रखा जाता है, तो समझ लेना चाहिए कि अब दुनिया में अहिंसा-शक्ति का उदय हो गया है। यह काम सामूहिक रूप में होना चाहिए। किसी एक बड़े पत्थर को हटाना हो, तो दस-पाँच लोग मिलकर हटायें, तभी वह हट सकता है। एक आदमी भोर में, दूसरा सुबह, तीसरा दोपहर को और चौथा शाम को आकर हटाने का प्रयत्न करे, तो वह कभी हट ही नहीं सकता। उससे शक्ति प्रकट नहीं हो सकती। इसी तरह अहिंसा-शक्ति प्रकट करने के लिए भी सामूहिक संकल्प अत्यावश्यक है।

जहाँ सरकार कर, कर्ज आदि से धन-संग्रह करती है, वहीं संपत्तिदान से भी करोड़ों रुपये इकट्ठा किये जा सकते हैं और यदि ऐसा होता है, तो अहिंसा की शक्ति बनती है। कानून की जगह करुणा से भी करोड़ों एकड़ जमीन पायी जा सकती है। कानून से तो वह जबर्दस्ती छीनी जाती है, पर करुणा से लोग खुश होकर देने लगते हैं। इसलिए मेरा यही प्रयत्न रहा है कि कानून की जगह करुणा ले ले। भूदान, ग्रामदान में प्राप्त इतनी जमीन से ही स्पष्ट है कि लोग करुणा का विचार समझते और सुनते हैं। मुझे विश्वास है कि वे मेरी पाँच करोड़ की माँग भी पूरी कर देंगे। मेरा यही प्रयत्न चलता है कि कानून की जगह करुणा, कर्ज की जगह दान, कर की जगह सर्वोदय-पात्र और शस्त्र की जगह शान्तिसेना बनें। यदि यह हो जाता है, तो आप जल्दी ही भारत में अहिंसा-राज्य देख सकेंगे।

एक कदम ही पर्याप्त है

आज मुझसे प्रेसवालों ने पूछा कि "जब देश पर बाहरी आक्रमण होगा, तो क्या उस समय आपकी यह शान्ति-सेना प्रतीकार करेगी? वह बाहरवालों पर आक्रमण करेगी या नहीं?" किन्तु अभी तो शान्ति-सेना की स्थापना ही नहीं हुई है। फिर यह प्रश्न ही कैसे हो सकता है? यह तो वैसी ही बात हुई कि बच्चा पैदा ही नहीं हुआ और करने लग गये उसके पराक्रम की बातें! मैंने उनसे कहा: "भाई! आज तो इतना ही कह सकता हूँ कि यदि देश की आन्तरिक अशान्ति में पुलिस और सेना का उपयोग न करना पड़े और शान्ति-सेना उस अशान्ति को मिटा

सके, तो फिलहाल मैं इतने ही से सन्तुष्ट हूँ। पहले आप इतना तो कर दिखाइये। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में किस तरह कदम उठाया जाय, यह तो आगे की बात है। एकदम बाहर के आक्रमण का सवाल उठाने से लाभ ही क्या है? हिन्दुस्तान की यह खूबी है कि यहाँ के लोग छूटते ही दर्शन की चर्चा करने लगते हैं, एकदम अन्तिम प्रश्न पूछ बैठते हैं! शान्ति-सेना किस तरह स्थापित की जाय, यह नहीं पूछेंगे। बाहरी आक्रमण होने पर वह क्या करेगी, यही पूछेंगे। यह गलत है। इसका उत्तर तो बापू ने दे ही दिया है। वे कहा करते थे कि 'मुझे एक कदम ही काफी है।' अभी आप इतना ही उठाइये, इसके बाद कौनसा कदम उठाना चाहिए, वह बाद में अपने आप ही समझ में आ जायगा। मैं गुजरात से ३ हजार और सारे भारत से ७५ हजार शान्ति-सैनिकों की माँग कर रहा हूँ; पहले इसे पूरा कीजिये। जब कि सेना घटाने के प्रश्न के समय रूस ने अपने यहाँ २० लाख सेना रखने की बात कही तो उसे देखते हुए ३५ करोड़ जनता से मेरी यह माँग कोई अधिक नहीं है। जामनगर में डेढ़ लाख की आबादी है तो आप लोग मुझे पाँच सौ शान्ति-सैनिक दें। आप इस पर विचार करें और उचित कदम उठायें।

●●●

भंगी-मुक्ति-सम्मेलन में

मोरली (मध्यसौराष्ट्र) ४-१-'२८

भंगी-काम की समस्याएँ और उनका हल

भंगी-मुक्ति एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न है। वर्षों से इस पर विचार चल रहा है। स्वराज्य-प्राप्ति के पूर्व भी हम लोग इस प्रश्न को हल करने के लिए सचेष्ट थे। पहले तो भंगी के काम का स्वरूप ऐसा रहना चाहिए, जिसे हर आदमी कर सके। आज उसके काम का स्वरूप ऐसा नहीं है कि कोई भी व्यक्ति उसे करे और उचित मान जाय। आज बेकारी अधिक होने से बहुत-से उद्योगों में ब्राह्मण आदि दीख पड़ते हैं। लेकिन भंगी-काम में सिवाय भंगियों के दूसरा कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। इस तरह स्पष्ट है कि भारत में यह काम मानवों के करने योग्य नहीं माना जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि अब ऐसे पाखाने बनने चाहिए, जहाँ आदमी की जरूरत ही न पड़े। ऐसे पाखानों का आजकल प्रचलन भी है। लेकिन इससे मलमूत्र का उचित उपयोग नहीं हो पाता। हिन्दुस्तान में मलमूत्र का उचित उपयोग होना अत्यावश्यक है। उनका उचित उपयोग हो और बुरा भी न लगे, ऐसा स्वरूप इस काम का होना चाहिए।

नयी पीढ़ी भंगी-काम में न उतरे

भंगियों के बच्चे जो अब नये भंगी बनेंगे, वे भंगी-काम से मुक्त रहें। जो पुराने भंगी का काम कर रहे हैं वे तो करेंगे ही। लेकिन २० वर्ष का कार्यक्रम बनाकर, पुराने भंगियों को किसी तरह की तकलीफ न देते हुए यह बात साधनी हो तो सबसे बड़ी बात यह होगी कि नयी पीढ़ी भंगी-काम में कभी न उतरे। इस तरह इन १५।२० वर्षों के दरम्यान भंगी-लोग इस काम से मुक्त हो सकते हैं।

तीसरी बात यह है कि जिस प्रकार हम लोग अन्य बहुत-से उद्योगों को प्रोत्साहन देते हैं, उसी प्रकार भंगियों को जमीन पर बसाना भी अपना लक्ष्य बनायें। हम उन्हें खेती करना भी सिखायें। भंगी-वर्ग खेती का काम करने लग जाय, तो बहुत अच्छी बात होगी। इससे भी सुन्दर योजना बन सकती है।

किसी भी समाज की मुक्ति आन्तरिक जागृति के बिना हो नहीं सकती। इसलिए भंगियों को आत्मज्ञान भी होना चाहिए। इस पर सहज ही यह प्रश्न हो सकता है कि जब आत्मज्ञान और बहुतों को नहीं है, तो इन्हें कहाँ से हो सकता है? लेकिन यदि हम लोगों को यह समझाने की स्वतंत्र योजना करें कि हम कौन हैं और हमारा कर्त्तव्य क्या है तो सभी को इसका भान हो सकता है। भंगियों को भी अपने स्वरूप का भान होना चाहिए। नम्रतापूर्वक समाज की सेवा करते समय अपने सेव्य लोगों को कुछ शिक्षा देने की योग्यता भी भंगियों में होनी चाहिए। इस तरह सेवा करते हुए वे नागरिकों को शिक्षा दें, यह चौथी बात है। इस बारे में हम क्या कर सकते हैं और क्या करेंगे, यह चर्चा का विषय है। फिर भी मैं मानता हूँ कि अमुक मियाद तय करने के बाद सभी भंगियों को मुक्त कर देना चाहिए। दस वर्ष का कार्यक्रम बनाया जा सकता है। इस अवधि में भंगियों को दूसरा काम देना चाहिए और उनके इस काम को सार्वजनिक बना देना चाहिए। हर घरवाले खुद ही मल-मूत्र आदि उठाने का काम करें तथा म्युनिसिपलिटी की गाड़ी आने पर अपने हाथों से ही उसमें इसे डालें। नागरिकों को शिक्षित करने में यह बड़ी सहायता पहुँचायेगा। एक-एक भंगी इस काम से मुक्त होगा और उसे दूसरा काम करना पड़ेगा।

मैट्रिक तक की योग्यता अपेक्षित

सफाई-काम में भी कम-से-कम योग्यता मैट्रिक की रखनी चाहिए। मैट्रिक पास व्यक्ति ही यह काम कर पाये, ऐसा नियम हो जाना चाहिए। फिर उसे वेतन साधारण मैट्रिकवालों से अधिक रहे तो कोई हर्ज नहीं। यदि दूसरे कामों में उन्हें ४०) मिलते हों तो यहाँ उन्हें ८०) मिलें, लेकिन मैट्रिक पास हुए बिना किसीको भी सफाई के काम में प्रवेश न दिया जाय। सफाई-काम बहुत ही महत्त्व का काम है, उससे भी समाज-शिक्षण होता है। ऐसे काम में प्रवीण सेवक होने चाहिए।

आज तो भंगी और हरिजनों को भंगी-काम सौंपकर उन्हें शिक्षण और वेदाध्ययन का अधिकार ही नहीं दिया जाता। उन्हें हीन माना जाता है। फिर समाज के निरोगी होने की आशा रखना सर्वथा गलत है। वास्तव में स्वास्थ्य-विभाग ब्राह्मण का अपना विभाग है, शूद्र का नहीं। ब्राह्मण के लक्षणों में ही 'शौच' शब्द आता है, शूद्रों के नहीं। इसलिए सफाई का काम करनेवाले ब्राह्मण ही होने चाहिए। 'ब्राह्मण' का अर्थ ब्राह्मण जाति नहीं। अगर कोई मैट्रिक पास हो जाता है तो वह ब्राह्मण बन जाता है। इतना ध्यान तो अवश्य रखना ही होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें अंग्रेजी की जरूरत है। लेकिन द्विज हुए बगैर सफाई का काम नहीं मिलना चाहिए। सफाई वैज्ञानिक सफाई का ध्यान रखकर ही की जाय, यह मेरी मुख्य सूचना है।

काठियावाड़ से ही श्रीगणेश हो

सफाई-काम में आनेवाले भाई-बहनों को फिर दूसरे उद्योग दिये जायँ और इस तरह एक-एक कर वे समाज में घुल-मिल जायँ। फिर इनकी खाली जगहों पर नये मैट्रिक पास लोग आयें। मुझे तो यही सबसे अच्छी योजना मालूम पड़ती है। फिर तो सुन्दर झाड़ की भी खोज होगी। खड़े होकर झाड़ू कैसे लगायी

जाय, संक्रामक रोग-निवारक औषधियाँ कहाँ-कहाँ डाली जायँ, नागरिकों को यह सिखलाना कि चाहे जो चीज चाहे जहाँ छोड़ देने से हानि होती है—इस प्रकार की आदर्श वैज्ञानिक सफाई तभी हो सकेगी, जब कि हम उपर्युक्त योजनाएँ काम में लायें। मैं चाहता हूँ कि काठियावाड़ इसकी शुरूआत कर दे। अगर इसमें अधिक वेतन रखा जाय, तो मैट्रिकवाले भी अर्जी देने लगेंगे। यहाँ उपस्थित लोगों से मैं पूछता हूँ कि आपके लड़कों में से कोई इसमें आयेगा या नहीं? आप अपने बच्चों को इसके लिए प्रेरणा देंगे या नहीं? वास्तव में मैट्रिक पास करने के बाद प्रत्येक व्यक्ति एक वर्ष तक यह नौकरी अनिवार्य रूप से करे। उसके बाद ही उसे सर्टिफिकेट देकर कॉलेज में प्रवेश दिया जाय। यदि ऐसा हो, तो शिक्षा-विभाग का काम भी आसान हो जाय और कॉलेजों में भी जो भीड़ लगती है, वह कम हो जाय।

यदि आप लोग अपने मैट्रिक पास बच्चों को इस काम के लिए न भेजें तो इसका आरंभ ही न हो पायेगा। इस तरह स्वयं या अपने बच्चों से यह काम कराना चाहिए। लेकिन वे इस काम को अवैतनिक रूप से न करें, बल्कि वेतन लेकर ही करें। अवैतनिक काम व्यर्थ होगा। आज हिन्दुस्तान में ऐसे कामों की प्रतिष्ठा नहीं है। लेकिन इस प्रकार काम करने से धीरे-धीरे ये काम सुधर जायँगे। इसके लिए इस काम को प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिए। मैं तो यही सोचता हूँ कि जिस तरह पाँच वर्ष सेना में काम करने की बात बड़े गौरव से कही जाती है और उसे 'अत्यन्त महत्त्व प्राप्त होता है, उसी तरह पाँच वर्ष म्युनिसिपलिटी में सफाई के काम की भी प्रतिष्ठा मानी जाय। लेकिन सवाल यह है कि आप लोग अपने बच्चों को इस काम के लिए भेजेंगे या नहीं? नहीं तो बाबा का व्याख्यान सुनकर कह देंगे कि कहा तो बहुत अच्छा, पर यह सारा अव्यवहार्य है।

[इस पर कार्यकर्ताओं ने कहा कि 'हमें मंजूर है।' फिर पू० बाबा ने कहा :]

वर्षारंभ से कार्य प्रारम्भ करें

यदि हाईस्कूल में सफाई का विषय पढ़ाया जाय तो हर लड़के को यह मालूम पड़ने लग जाय कि यह काम भी करने योग्य है। अब प्रश्न है कि इस दृष्टि से इस काम के लिए कौन अगुआ बनेगा? आरम्भ तो अपनी मर्जी से ही होना चाहिए, फिर भले ही कर्तव्य के रूप में वह किया जाय। यह काम मोरली की म्युनिसिपलिटी करे और आप लोग अपने बच्चों को भेजें। इस तरह दस-पाँच लड़के तैयार हों, उन्हें नौकरी दी जाय, तो दुनिया के सामने एक आदर्श खड़ा हो जायगा। फिर इस विचार को चालना मिलेगी। फिर तो इस खुशी के काम को कर्तव्य रूप में भी परिणत किया जा सकता है। किंतु आरम्भ अपनी खुशी से ही होना चाहिए। जनवरी से नया वर्ष शुरू हो रहा है, चाहें तो तभी से इसे शुरू कर दें।

वर्धा में भंगी-काम १०-१२ वर्षों तक चला। एक-एक टोली यह काम करती थी। इससे वर्धा की म्युनिसिपलिटी पर कुछ परिणाम हुआ है। साने गुरुजी जलगाँव में यह काम करते थे। अप्पासाहब पटवर्धन ने जेल में अनशन करके भी यह यह काम करने की आज्ञा पायी और उन्होंने बड़ी लगन के साथ इसे किया। फिर भी वे कह रहे थे कि अभी मन में से इस काम से घृणा नहीं मिट पायी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह काम करने योग्य नहीं है। अतः भंगियों को इससे मुक्ति मिलनी ही चाहिए। यह निष्काम बुद्धि से होने योग्य काम नहीं। म्युनिसिपलिटी अपना सुधार करने की बात कहती है तो यह अच्छा ही है। ऐसी स्थिति में नागरिक स्वयं और अपने बच्चों को ज्ञानपूर्वक इसमें दाखिल करें तो इसका बड़ा ही भव्य आरम्भ होगा। इससे बच्चों को तालीम मिलेगी और समाज में से इस काम के बारे में से अप्रतिष्ठा मिट जायगी।

जातिभेद या कार्यभेद का अंत हो

अब जल्दी ही जाति-भेद की इति श्री होनेवाली है अर्थात् जातियों की छूआछूत मिटनेवाली ही है, वह टिक ही नहीं सकती। लेकिन अंग्रेजी विद्या के कारण हमारे देश के जो अनिष्ट हुए हैं, उनमें एक यह भी है कि हम ऊँच-नीच का भेद-भाव मानने लग गये हैं। खुद को ऊँचा और दूसरों को नीचा मानने लगे। इसी कारण यह सारा अन्तर पड़ गया। इसे मिटाने के दो ही उपाय हैं। एक तो उपर्युक्त योजना और दूसरा यह कि 'अमुक काम के लिए अधिक वेतन, अमुक के लिए कम' यह बात मिटा दी जाय। जब तक वेतन का काम के साथ सम्बन्ध रहेगा, तब तक समाज में विरोध बना ही रहेगा। तीसरी बात यह है कि इस काम को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करायी जाय। जब तक समाज अमुक काम ऊँचा, अमुक नीचा मानता रहेगा, इस समस्या का हल संभव नहीं।

ग्रामदान की घोषणा हो

इसके अतिरिक्त सबसे महत्त्व का उपाय तो यही है कि ग्रामदान की घोषणा की जाय। जमीन सारे गाँव की कर दी जाय। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को जमीन या उद्योग दिया जाय। जमीन की मालकियत ग्राम-सभा की हो जाय। गाँव के हर घर की आवाज और आवश्यकता पर ध्यान दिया जाय। इस तरह योजना की जाय तो भंगियों के सवाल भी हल हो सकेंगे। ग्रामस्वराज्य की स्थापना ग्रामदान की नींव पर ही होगी। ग्रामस्वराज्य के लिए स्वयं संकल्प करना पड़ता है और उसके लिए ग्रामदान के सिवा दूसरा उपाय ही नहीं है। आज तो गाँवों में जातियों के अनुसार अलग-अलग लोग रहते हैं। हरिजनों के लिए भी अलग जगह रखी जाती है। ऐसी स्थिति में यदि कोई हरिजनों की बस्ती में अलग कुँआ बना देता हो तो उसका विशेष विरोध न किया जाय। भेद जबर्दस्ती मिटाया नहीं जा सकता।

प्रश्नः—हरिजन दूसरों के साथ समाज में आने में संकोच करते हैं। इसे मिटाने के लिए क्या किया जाय?

विनोबाः—ग्रामदान में तो हरिजन-परिवार को भी मालिकों में शामिल कर लिया जायगा। गाँव की जमीन पर उनका भी अधिकार रहेगा और ग्राम-सभा में उनके मत का भी उतना मूल्य रहेगा, जितना कि अन्य लोगों का। अगर किसी प्रस्ताव के साथ हरिजन या दूसरे भी कोई सहमत न हों तो वह पास नहीं हो सकता। ग्राम-सभा की भी कुछ न चलेगी। सभी एक साथ बैठकर भोजन करें, तभी वह ग्रामदान होगा, ऐसा आग्रह दुराग्रह कहा जायगा, यद्यपि हम चाहते ऐसा ही हैं। ग्रामदान में माँग इतनी ही की जाय कि आर्थिक दृष्टि से जमीन सबकी हो, जिससे सभी सन्तुष्ट रहें। यदि किसीको जमीन न दे सके तो उन्हें उद्योग दिया जाय। वह भी न दे सकें तो उनके खाने-पीने की व्यवस्था की जाय। ऐसे लोगों में हरिजनों का समावेश हो ही जाता है।

● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन फतेहपुर (राज०) १८-३-'५९

राष्ट्र की उन्नति के लिए सामाजिक चेतना को जागृत करें

आठ साल से हम लगातार घूम रहे हैं। इस बीच लाखों भाई-बहन के दर्शन किये। भाई-बहन ही हमारे पूजनीय देवता हैं। हम उन्हींके दर्शन के प्यासे हैं।

आपका यह ग्राम एक ऐतिहासिक स्थान है। हिन्दी भाषा के भूषण श्री सुन्दरदासजी ने वर्षों यहीं रहकर तपस्या की और यहीं अपने ग्रन्थ भी लिखे हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है कि 'प्रभु तरह-तरह के रूप लेकर आते हैं। वे कहीं पुण्य रूप में प्रकट होते हैं, तो कहीं पाप रूप में। कहीं चोर के रूप में दिखाई देते हैं, तो कहीं साहूकार के रूप में। कभी कोयल ही उनका रूप होता है, तो कभी कौआ। विविध प्रक्रियाओं में भगवान के दर्शन करते समय हमें कभी राग भी दिखाई पड़ता है और द्वेष भी, ज्ञान भी दिखाई पड़ता है, और अज्ञान भी।' इन विविध रूपों और विभिन्न प्रक्रियाओं में हम भी अपनी पदयात्रा में परमेश्वर की झाँकी का ही अनुभव कर रहे हैं।

सर्वोदय की बुनियाद मालकियत का विसर्जन

आज एक भाई जो कि गायों के प्रेमी हैं, हमसे पूछ रहे थे कि हमारा गाँव बड़ा कस्बा होने के कारण ग्रामदान तो नहीं हो सकता। इसलिए अभी हमें क्या करना चाहिए?

हमने कहा: 'घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखो और अपने यहाँ सेवापरायण नीतिमान कार्यकर्ता तैयार करो। वे घर-घर में जाकर सभीके सुख-दुःखों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करें और कठिनाइयों के निराकरण के लिए भरसक चेष्टा करें। वे एक काम यह भी करें कि सात साल से कम आयुवाले गाँव के सभी बच्चों को एक-एक पाव दूध पिलायें। जिनके माता-पिता दूध खरीद सकें, वे खरीद कर दें और जिनके अभिभावकों में वह क्षमता न हो, उन बच्चों को मुफ्त में दूध मिल जाय, ऐसी सत्प्रवृत्ति शुरू करनी चाहिए।

सर्वोदय में सभी का भला है। सर्वोदय के काम के कई अंग हैं। गो-सेवा, ग्रामोद्योग, खादी, हरिजन-सेवा, तालीम, राष्ट्रभाषा-प्रचार आदि सभी कामों का इसीमें समावेश होता है। इसकी बुनियाद है—मालकियत का विसर्जन। जमीन पर किसीकी मालकियत नहीं हो सकती। हवा-पानी की तरह जमीन भी सभीके लिए है। उसका उपयोग सारे गाँव के लिए होना चाहिए। जो सबसे गरीब हैं, उनकी चिन्ता गाँववाले करें। कोई भूमिहीन न रहे। सबको खाना और कपड़ा मिले, यह जिम्मेवारी गाँववाले उठायें—इसका नाम है ग्रामदान। जमीन का कुल रकबा गाँव के पास आ जाने से फिर गाँव के लोग ही तय करें कि मनुष्यों के लिए कितनी जमीन रखना है और गायों के लिए कितनी? कपास कितना बोना चाहिए? फसल कौन-कौन-सी लगानी चाहिए? गाँव की अन्य जरूरतें कैसे पूरी की जायँ। इस बारे में सारी व्यवस्थित योजना गाँववाले ही बनायें, यही ग्राम-स्वराज्य का बुनियादी विचार है।

पुस्तकालय कैसे हों?

यहाँ के पुस्तकालय में नयी-पुरानी अनेकों पुस्तकें हैं। मैंने पुस्तकालयवालों से पूछा कि इन पुस्तकों को पढ़नेवाले कितने हैं? उन्होंने बताया कि कुछ लोग हैं। अधिकांश लोग तो पढ़ने में रुचि नहीं लेते। अध्ययन करनेवालों के बिना पुस्तकों का उपयोग क्या है? वे कपाट में पड़ी सड़ती रहेंगी।

वेदों से भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है। वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मण के बिना वेदों का उपयोग क्या है? इसलिए सबसे बड़े वेद और वेदों से बड़े हैं—ब्राह्मण। भगवद्गीता में एक श्लोक है:

"ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥"

यहाँ पर उत्तम लाइब्रेरी होना अच्छा है। पर इसके साथ एक निवासस्थान भी बनाना चाहिए था। फिर विद्वानों को उसीमें रहने के लिए निमंत्रित करना चाहिए था। आप विद्वानों से कहते कि यहाँ रहकर अध्ययन कीजिये और कोई संशोधन करके समाज के सामने प्रस्तुत कीजिये।

यह सीकर का प्रदेश है। यहाँ के व्यापारी सारे हिन्दुस्तान में व्यवसाय करने के लिए जाते हैं। वे हजारों रुपये समाज के हित के लिए प्रतिवर्ष खर्च करते हैं! उनके लिए इस पुस्तकालय पर भी कुछ खर्च करना कोई कठिन नहीं है। लेकिन अध्ययन करनेवाला मिलना चाहिए। अध्ययन करनेवालों को ढूँढ़ना होगा।

तालीम स्वनिर्भर हो

इन दिनों जो तालीम दी जा रही है, वह बिलकुल ही बेकार है। पढ़नेवालों में कोई काम करने की शक्ति नहीं। वे व्यवहार के ज्ञान से भी अपरिचित हैं। उन्होंने पढ़ाई को नौकरी करके पेट भरने का साधन बना लिया है। पढ़े-लिखे समस्त लोगों को नौकरी भी मिल जाती तो कोई बात नहीं थी। लेकिन वैसा भी तो नहीं है। विद्यार्थियों के मन पर बराबर यह भार बना रहता है कि परीक्षा में तो किसी तरह उत्तीर्ण हो जायेंगे, फिर क्या होगा? कॉलेज के विद्यार्थी बी० ए० में आते ही चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं। उससे पूर्व तो उन्हें अपनी जिम्मेवारी का भान ही नहीं होता।

विद्यार्थियों ने अपने जीवन में कोई काम नहीं किया, सेवा नहीं की। सिर्फ किताबों का अध्ययन-अध्यापन करते रहे। इससे वे ठंड बर्दाश्त नहीं कर सकते, गर्मी सहन नहीं कर सकते और वर्षा में खट भी नहीं सकते। खेतों में काम करने में वे अक्षम हैं। उनसे उद्योग-धन्धों को भी कोई आशा नहीं है। लोग भी कहते हैं कि ये पढ़े लिखे लोग बी० कॉम० नहीं, बेकाम बन जाते हैं। हजार रुपये उनको दे दो, पर वे व्यापार का काम कर नहीं सकते। उलटे एक साल में ही वे एक हजार का पाँच सौ कर लायेंगे। इस प्रकार वर्तमान तालीम में न व्यावहारिक ज्ञान मिलता है और न पारमार्थिक ज्ञान ही मिलता है।

भूख लगने पर व्याकरण खाया नहीं जाता। प्यास लगने पर काव्य पीया नहीं जाता। ऐसी स्थिति में आज के शिक्षितों की दशा धोबी के कुत्तेवाली हो जाती है। उनकी दयनीय दशा को सुधारने के लिए जनता का कर्तव्य है कि वह शिक्षण को अपने हाथों में ले ले। इंग्लैण्ड में शिक्षण सरकार के हाथों में नहीं है। वहाँ की प्रजा ने शिक्षण को अपने हाथों में रखा है। इसीलिए इंग्लैण्ड के लोग स्वातन्त्र्यप्रेमी हैं। उनपर किसी-का दबाव नहीं चल सकता। पिछले दिनों इंग्लैण्ड की सरकार ने ईजिप्ट पर आक्रमण किया तो वहाँ के लोगों ने ही प्राइमिनिस्टर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। आखिर प्राइमिनिस्टर को त्यागपत्र देना पड़ा। इंग्लैण्ड ने ४०० वर्षों पूर्व हिन्दुस्तान

को दबाया। उस समय वहाँ लोकजागृति न थी। लेकिन इतने ही अल्प समय में इंग्लैण्डवालों में इतना परिवर्तन हो गया है! क्योंकि उनका दिमाग स्वतन्त्र है। सरकारी तालीम के ढाँचे में वे ढले हुए नहीं हैं। हमारे यहाँ सारी-की-सारी तालीम सरकार को सौंप दी गयी है। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? आजाद दिमाग रखने के लिए प्रजा को ही तालीम के प्रयोग करने होंगे।

नौकर को आप हिदायत देते हैं कि खेत में बाजरा इतना बोना है, कपास इतना बोना है और वह सारा काम हिदायत के अनुसार ही कर देता है। वही हालत वर्तमान में शिक्षकों की है। जो शिक्षक किसी जमाने में राष्ट्र-निर्माता, महान् आचार्य थे, वे ही शिक्षक आज सरकारी नौकर बन गये हैं। वे अब अपनी तनख्वाह बढ़ाने की माँग करते हैं। भंगी और पोस्टमैन भी ऐसी ही माँग करते हैं। शिक्षण की कितनी दुर्दशा हो रही है।

यह प्रदेश श्रीमानों का प्रदेश है। यहाँ पर स्वतन्त्र विद्यालय चलने चाहिए। जिनमें विद्यार्थी पारमार्थिक और आध्यात्मिक शिक्षा पायें, खेती का काम करें, संस्कृत सीखें और व्यावहारिक ज्ञान में भी प्रवीण बनें। सरकारी युनिवर्सिटी की परीक्षा पास करने की जरूरत क्या है? नौकरी कितने लोगों के लिए सुलभ होगी? स्वतन्त्र विद्यालय चलायें तो सरकार को भी दखल देने से मना कर सकते हैं।

आज कांग्रेसी सरकार है तो तालीम पर कांग्रेसी रंग आयेगा। कल जनसंघी सरकार आयी तो उसीका रंग आयेगा और फिर कम्युनिस्ट सरकार आयी तो तालीम पर वैसा ही रंग रहेगा। सरकार तालीम का जो यन्त्र बनायेगी, विद्यार्थियों का दिमाग उसी ढाँचे में ढाला जायगा। सारे दिमागों को एक शिकंजे में कस देने से मतदान का कोई अर्थ नहीं रह जायगा।

प्रातिनिधिक व्यवस्था का दोष

आप लोग जन-शक्ति के बल पर जितना काम खड़ा कर सकते हैं, उतना ही सरकार पर कार्य का जो बोझ है, वह हल्का होगा। आज क्या हो रहा है? शादी के कानून, जमीन के कानून, तालीम के कानून, समाज-सुधार के कानून, खेती-सुधार के कानून, उद्योग-व्यापार के कानून, धर्म-व्यवहार के कानून आदि सारे कानून सरकार बना रही है। याने सारे काम सरकार करेगी। फिर हम क्या करेंगे? दो हमारे बड़े-से-बड़े काम हैं, समाज-सेवा और धर्म-विचार! समाज-सेवा का काम प्रतिनिधियों को सौंप दिया और धर्म-विचार का काम सौंप दिया मंदिर-मस्जिद-वाले मुल्ला-महन्तों को। हमारे बदले में खायें, पीयें और नींद भी वे ही लें, इतना काम और नहीं सौंप दिया! अन्यथा जीवन क्या का क्या ही हो जाता। हिन्दू-मुसलमानों का धर्म के साथ मुख्यतः तीन बार संबंध आता है। एक तो बच्चा होते समय। हिन्दू लड़का होगा तो हरिलाल नाम रखा जायगा और मुसलमान होगा तो अबदुल्ला। मरने के बाद दूसरा संबंध आता है। उसे दहन करना चाहिए या दफन। हिन्दू होगा तो दहन किया जायगा और मुसलमान होगा तो दफन। तीसरा संबंध शादी में आता है। फिर कभी रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि या ऐसे कुछ पर्व आये तो कुछ मौन रह गये या फलाहार कर लिया तो हो गया धर्म।

व्यापारी कहते हैं धर्म के समय धर्म और व्यापार के समय व्यापार। दोनों के दो अलग-अलग स्थान हैं। व्यापार में धर्म नहीं चल सकता। वह तो आदर्श है। उनसे पूछा जाय कि इतना मुनाफा क्यों लेते हो? इस पर वे कहते कि पैसे का मूल्य इतना गिर गया है कि अधिक-से-अधिक मुनाफा लेना ही पड़ता है। वे लोग मंदिर के लिए पैसे दे सकते हैं। दूसरे शुभ कार्यों में भी हिस्सा बँटा सकते हैं और बाबा आ जाय तो उसे भी खिला सकते हैं। लेकिन व्यापार में मुनाफा लेना कम नहीं कर सकते।

व्यापारी अपने चोपड़ों पर श्रीहरि लिखते हैं। श्रीहरि याने श्री का हरण करनेवाला। ऐसा है हमारा व्यापारी वर्ग।

लक्ष्मी पैसा नहीं है

आज लक्ष्मी की पूजा होती है। वास्तव में लक्ष्मी का पैसे के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। लक्ष्मी तो खेत में परिश्रम करने से पैदा होती है और पैसा तो छापेखाने में छपता है, कागज पर ठप-ठप-ठप। लेकिन ये पैसे को ही लक्ष्मी समझे बैठे हैं और उसीकी पूजा करते हैं। पैसा पिशाच है और लक्ष्मी देवता। दोनों में इतना फर्क है। पैसा झूठ बोलता है। एक रुपया लिया और एक रुपया दे दिया। जिस समय एक रुपया लिया, उस समय एक रुपये के दस सेर गेहूँ मिलते थे और आज दो सेर मिलते हैं। तो एक रुपया लिया और एक रुपया दिया, ऐसा तो यह नहीं हुआ। याने रुपया सत्य नहीं बोलता। उसको पूछो, तेरी कीमत क्या है? तो वह आज एक बोलेगा, कल दूसरा बोलेगा, परसों तीसरा बोलेगा। ऐसा लफंगा है पैसा। उसका कोई स्थिर मूल्य है ही नहीं। जिसका स्थिर मूल्य नहीं है, वह पैसा है।

एक सेर चावल, यह लक्ष्मी है। एक सेर चावल में चालीस साल पहले जितना पोषण मिलता था, उतन ही आज भी मिलता है। हमारी पाचन-शक्ति कम हुई हो, वह अलग बात है। एक सेर दूध से चालीस साल पहले जितना पोषण मिलता था, उतना ही पोषण आज भी मिलता है। ऐसी स्थिति में हम वास्तविक लक्ष्मी से हटकर पैसे की ओर ताक रहे हैं। राक्षस को देव समझ करके उसकी पूजा करेंगे तो क्या हालत होगी?

बहुत दिनों की बात है। हम लोग कहींजा रहे थे। रास्ते चलते बातें भी हो रही थीं। मैं अपनी स्थिर दृष्टि से चला जा रहा था। चलते हुए इधर-उधर देखना मुझे पसंद नहीं है। लेकिन मेरे मित्र की नजर इधर-उधर जा रही थी। उसे एक जगह रास्ते में पड़ा हुआ सोने का गहना मिला। उसने वह उठाया और मुझसे पूछा कि इसका क्या किया जाय? मैंने कहा, वह जहाँ पड़ा था, वहीं रखो और चलने लगो या तो कहीं गढ्ढा करके उसमें रख दो या तो फिर पुलिस में जाकर दे दो। आखिर वह मैंने उसके हाथ से फेंकवाया। मैंने कहा कि इस सोने की क्या कीमत है? गीता में आया है कि मिट्टी का ढेला और सोना समान समझो। यह पुरानी बात है, लेकिन आज तो मिट्टी की कीमत सोने से बहुत ज्यादा है। सोने पर पानी गिरने से उसमें फसल नहीं आती, लेकिन मिट्टी पर पानी गिरने से उसमें से फसल आती है। मिट्टी जिन्दा है, उसके कण-कण में जीवन है। सोना निर्जीव है, पत्थर का ढेला। हाँ, किसीको क्षय-रोग हुआ हो तो उसका पानी पीने के काम में आ सकता है। रास्ते में पड़ी कोई सोने की चीज मिली, उसीके बल पर लोग श्रीमान् बन जायँ, क्या यह ठीक है? क्या इसी से मानव-जीवन धन्य हो जायगा? इसीसे हो गया समाधान?

पैसे को अधिक महत्त्व देने से आज धर्म नाम मात्र का रह गया है।

लोगों में प्रेम नहीं, सत्य नहीं, करुणा नहीं, फिर भी धर्मशाला बना देते हैं। श्राद्धोपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन खिला देते हैं। बस, इतने से ही अपने को धन्य मान लेते हैं। कितना असत्य है यह ? कोर्टों में, राजनीतिज्ञों में, बाजारों में और यहाँ तक कि लग्न आदि सामाजिक व्यवहारों में भी असत्य चलता है। इस असत्य से ऊपर उठने के लिए जीवन में सात्त्विक गुण प्रकट करने के साथ-साथ लक्ष्मी के वास्तविक स्वरूप को भी समझना होगा।

लोग अपने लड़कों के नाम हीरालाल, माणिकलाल, मोतीलाल आदि-आदि रखते हैं। ये नाम पैसों के गलत मूल्यों की प्रतिष्ठा के द्योतक हैं। पुराने जमाने में एक मनुष्य ने अपने लड़के का नारायण नाम रखा। मरते समय उसे पुकारा। लड़का जल्दी नहीं आया। उसी समय नारायण (भगवान) ने आकर उसका उद्धार कर दिया।

खेती करना पाप है तो क्या खाना पाप नहीं ?

भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन को भारतीयों में बैल कहा। गौतम बुद्ध याने सर्वोत्तम बैल। जैनों के आदि तीर्थंकर का नाम ऋषभदेव था। ऋषि और ऋषभ दोनों एक ही धातु से बने हुए शब्द हैं। वीरवृषभ स्कंध। बैलों जैसे कंधे और बैलों जैसी गति। पुराने जमाने में ऋषि उत्पादन का काम करते थे। ऋषभ आगे चलते थे और ऋषि पीछे। 'अन्नं बहु कुर्वीत तद्व्रतम्' अन्न बढ़ाने का व्रत लेना ही उस समय का धर्म था। आज भी 'अधिक अन्न उपजाओ' का आन्दोलन चलता है। लेकिन उससे होता क्या है ? यह दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश में सौ करोड़ रुपयों का अनाज प्रतिवर्ष विदेशों से मँगवाया जाता है। क्यों ? आपको इस प्रश्न की गहराई में उतरना चाहिए।

हमारे यहाँ के व्यापारी हीरा, मोती, लाल इकट्ठे करने में लगे हुए हैं। वे खेती नहीं करते। जिन लोगों को खेती की तालीम नहीं मिली, उत्पादन का सम्यक् शास्त्र सीखने को नहीं मिला, वे लोग आज लाचारी से खेती के काम में लगे हुए हैं। जिन लोगों को खेती का ज्ञान है, वे खेती करते नहीं हैं। कुछ जैन बन्धु तो खेती करना पाप मानते हैं। खेती के काम से जन्तुओं की हिंसा होती है। पर वह हिंसा लाचारी की हिंसा है। शरीर के साथ-साथ कुछ-न-कुछ हिंसा जुड़ी हुई है। इसलिए उससे बचकर आप नहीं रह सकते। धान्य उत्पादन करने में हिंसा होती है तो क्या धान्य का व्यापार करने में हिंसा नहीं होती ? खाना पैदा करने में पाप है तो क्या खाना खाना पाप नहीं है ? कृषिकार्य को पाप कहने से ही उसके प्रति अनादर उत्पन्न होता है। फलतः खेती अच्छी नहीं हो रही है।

जनशक्ति निर्माण करें !

कार्यकर्ताओं की सभा में अनेकों लोगों को उपस्थित देखकर सोचने लग जाता हूँ कि इतने लोगों के रहने के बावजूद राष्ट्र-विकास का कार्य क्यों नहीं होता ? फिर बताया जाता है कि अमुक कम्युनिस्ट है तो अमुक अमुक है। याने दुनिया में आग लगानेवालों को कार्यकर्ता कहा जायगा ? खैर वे लोग भी कुछ कार्य तो करते ही हैं। २६ जनवरी आयी तो झंडा फहरा दिया। १५ अगस्त आया तो नारे लगा दिये। २ अक्तूबर आया तो गांधीजी का जयजयकार कर दिया। जैसे जन्माष्टमी, शिवरात्री, रामनवमी आदि अवसरों पर धर्मकार्य करते हैं, वैसे ही इन अवसरों पर भी कुछ प्रदर्शन कर दिया। फिर खेला खतम। राष्ट्र-निर्माण का काम इतने से कैसे होगा ? भिन्न-भिन्न पार्टियोंवाले लोग गाँव में आग लगाना बन्द कर दें, तब भी बहुत काम हो सकता है।

भागवत में गोकुल-वृन्दावन का वर्णन आया है। गोकुल में आग लगी। भगवान कृष्ण उस आग को पी गये। अब आग लगानेवाले बहादुर तो बहुत मिलेंगे। लेकिन आग पीनेवाला कहाँ मिलेगा ? आजकल के कार्यकर्ता चुनाव जीतने के लिए गाँवों में जाते हैं, फिर कभी उस क्षेत्र में जाते ही नहीं। संयोग से हमारे जैसा आदमी घूमते हुए उस क्षेत्र में आ जाय तो कभी-कभी वे भी हमारे साथ घूम लेते हैं। हम आये और वे हमारे साथ न घूमे तो उन्हें 'लोक-दृष्टि में अच्छा नहीं लगेगा' ऐसा अनुभव होता है। इसलिए एक दिखावे के तौर पर ही सही, लेकिन हमारे साथ घूम लेते हैं।

दिल्ली में एक नाटक अकादमी है। जगह-जगह नाटक चलते हैं। सारा झूठ फैल रहा है। बड़े-बड़े प्रस्ताव पास करते हैं। लेकिन उन पर अमल नहीं होता। नागपुर कांग्रेस में यह एक सादा-सा प्रस्ताव पास हुआ कि गाँव-गाँव के लोगों को सहकारी खेती के लिए समझाया जाय। उस पर कितना हो-हल्ला मचा। सारे भारत में तोबा-तोबा हो गया। इसलिए इस प्रोपगण्डा से हटकर हमें वास्तव में जनशक्ति-निर्माण का ही काम करना चाहिए।

धर्म का काम स्वयं करें ! गाँवों की समस्या भी अपने आप हल करें ! तालीम का काम भी अपने ही हाथों में रखें। आरोग्य के लिए भी दूसरों का मुँह न ताकें तो इस दिशा में बहुत बड़ा काम हो सकता है। ग्रामदान के जरिये हम इसी मार्ग की प्रशंसा कर रहे हैं। लोग अपने-आप अपने सामर्थ्य को समझें ! आज तो आपस में एकता नहीं है। जनता में साहस नहीं है। इसीलिए देश की रक्षा के लिए सेना रखी जाती है। उस पर करोड़ों रुपयों का खर्च होता है। इतने बड़े खर्च के बाद गरीबों की सेवा के लिए पैसा कहाँ से आयेगा ? जब तक गरीब लोगों को स्वराज्य का आनन्द नहीं आयेगा, तब तक राष्ट्र का कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हो सकता।

● ●

"बड़े पुरुष और महापुरुष में अन्तर है। बड़े पुरुष बड़े वृक्ष के जैसे होते हैं, जिनके नीचे छोटे वृक्ष बढ़ते नहीं, क्योंकि वे सारा पोषण खा जाते हैं। वे बड़े हैं, तो स्वार्थ में भी बड़े होते हैं। परन्तु 'महापुरुष' गाय के जैसे वत्सल होते हैं। वे खुद घास, कड़वी खाकर बच्चे को दूध पिलाते हैं। उनके आश्रय में बच्चे पनपते हैं, बढ़ते हैं। महापुरुषों को अहंकार नहीं होता, इसलिए वे अपना पोषण दूसरों को देते हैं, दूसरों का पोषण लेते नहीं। यही कारण है कि महापुरुषों के आश्रय में जो छोटे थे, वे बड़े बने, जो झूठे थे, वे सच्चे बने और जो कायर थे, वे निर्भय बने।"

● ●

प्रदर्शनी के कार्यकर्ताओं के बीच

सर्वोदय-नगर (अजमेर) १-३-'५९

सफाई और प्रदर्शनी का शास्त्र समझ कर काम करें !

समयानुसार बाह्य यज्ञों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। वृक्ष-च्छेदन की आवश्यकता हुई तो 'वृक्षच्छेदन-यज्ञ' चला। पीछे से वृक्षों की आवश्यकता हुई और 'वृक्षारोपण-यज्ञ' प्रारम्भ हो गया। इसी प्रकार सूत कातने की जरूरत ने 'सूत्र-यज्ञ' को रूप दिया। वह आज भी चल रहा है। अब तो 'भूदान-यज्ञ' भी निकल आया है। इस प्रकार युगाकांक्षा के रूप में यज्ञ के स्थूल आकार में परिवर्तन होता रहता है। परन्तु मूलतः यज्ञ में कोई फेर-बदल नहीं होता।

बाह्य यज्ञों में सफाई भी एक यज्ञ है। हम किसी भी ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकते, जब कि मनुष्य 'सफाई-यज्ञ' करना बन्द कर देगा। यह नित्य-यज्ञ है। जैसे-जैसे विज्ञान प्रगति करता जायगा, वैसे-वैसे इस यज्ञ का भी आकार बदलना संभव हो सकता है। इसलिए पहले जितने समय में हम जितनी सफाई कर सकते थे, उससे कम समय में उससे भी अधिक सफाई कर सकेंगे। सफाई करने की पद्धति में फर्क होगा, लेकिन सफाई करना बन्द नहीं होगा। समाज में किसीको ओषधि-सेवन की आवश्यकता ही न होगी, इतना तो हम सोच सकते हैं, किंतु किसीको खाने की भी जरूरत न होगी— ऐसी कल्पना हम नहीं कर सकते। खाना जीवन के साथ जुड़ा है, उसी तरह 'सफाई-यज्ञ' जीवन से सम्बन्धित अनुष्ठान है। यह खुशी की बात है कि हम लोगों में अब सफाई के सम्बन्ध में दिलचस्पी पैदा हुई है।

मैंने सुना है कि इस सम्मेलन में आये हुये लोगों ने सफाई के नियमों का पालन करने में कुछ ढिलाई की है। फलतः कुछ मक्खियाँ बढ़ गयीं। इससे सभी को परेशानी रही। सफाई करनेवाले चन्द लोग ही सफाई की पूरी व्यवस्था कर लें, यह सम्भव नहीं है। इसलिए इस काम में उन लोगों को भी पूरा सहयोग देना चाहिए, जो इसे अपना काम नहीं मानते। सहयोग के अभाव में यह काम बहुत कठिन हो जाता है।

सफाई का काम भी एक शिक्षण का विषय है। गाँव-गाँव और घर-घर में सफाई होनी चाहिए। यह एक नित्यकार्य है। हर हालत में इस कार्य को करना ही होता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने स्वच्छता को परमेश्वर की भक्ति के साथ स्थान दे रखा है। इसे ईश्वर की भक्ति के एक अंग के तौर पर स्वीकार किया है, यह सर्वथा उचित है।

हिन्दुस्तान में हमारी छोटी-बड़ी लगभग ५०० संस्थाएँ हैं। वहाँ सफाई के कार्य को लेकर काफी प्रयोग किये गये हैं। उससे एक अच्छा-सा 'सफाई-शास्त्र' ही तैयार हो गया है। अब उस शास्त्र को अमल में लाकर वे संस्थाएँ अपने निकटवर्ती क्षेत्र के लिए एक आदर्श बनें, यह आवश्यक है। यह काम सर्वोदय का एक अनिवार्य अंग है। एक बार 'भारत-सेवक-समाज' वालों के सामने मैंने यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया था कि वे लोग भारत के समस्त क्षेत्रों की शुद्धि करें। उन्होंने उसके लिए एक साप्ताहिक अभियान भी चलाया। इसी प्रकार अन्य संस्थाएँ भी जितना संभव हो, उतना इस कार्य को वेग दें। फिलहाल तो लोग सफाई को नित्ययज्ञ के तौर पर स्वीकार कर लें, इतना ही पर्याप्त है। मुझे विश्वास है कि यदि समस्त संस्थावाले मिलकर मल-मूत्रादि का उत्तम उपयोग करने की दिशा में सक्रिय हो जायँ, तो हम अवश्य ही भारत को खाद्य-संकट से बचा सकते हैं।

मूत्रोपचार

अभी हमने water of life नामक एक पुस्तक पढ़ी थी। उसमें लेखक ने मनुष्य के मूत्र को ही water of life कहा है। वैसे तो जानवर का मूत्र भी water of life ही है। जीवन के द्वारा उत्पन्न किया गया पानी मूत्रोपचार नामक नयी पद्धति में बताया गया है कि मानव के मूत्र से बहुत सारे रोग दूर किये जा सकते हैं। वैष्णवों को यह सुनकर धक्का लगेगा और वे पूछ बैठेंगे कि मानव का मूत्र भी क्या कोई पीने की चीज है? परन्तु उस लेखक ने लिखा है कि मनुष्य एक ओर तो दवा के लिए लाखों रुपये खर्च करते हैं और दूसरी ओर सर्वोत्तम दवा से कोई लाभ नहीं उठाते। अपने मूत्र को पीना चाहिए। भिन्न-भिन्न रोगों के लिए वही एक रामबाण दवा है। जो भाई उस पुस्तक को देखना चाहें, वे मेरे पास आकर देख सकते हैं। राव जी भाई पटेल ने, जो कि गांधीजी के साथ दक्षिण अफ्रिका में थे, उस पुस्तक का गुजराती में अनुवाद किया है और उसका नाम रखा है 'मूत्र का उपचार'। Index की भाँति यह विषय भी अब विज्ञान का विषय हो गया है। इसलिए कम-से-कम आगे के लिए लोगों को अब मल-मूत्र से घृणा नहीं करनी चाहिए।

प्रदर्शनी की उपादेयता

अब मैं प्रदर्शनी के कार्यकर्ताओं से कुछ कहूँगा। उसके द्वारा किया गया प्रदर्शन हमें बहुत अच्छा लगा है। जैसे किसी पुस्तक में अनुक्रमणिका होती है और उसी के माध्यम से एक-एक विषय को देखना आसान होता है, वैसे ही ग्रामरचना की आकांक्षा रखनेवाले लोगों के लिए यह प्रदर्शनी एक अनुक्रमणिका के तौर पर ही होनी चाहिए। ग्राम कैसे बनाया जाय, यह प्रदर्शनी को देखते ही मालूम पड़ना चाहिए। दुनिया में जो कुछ है, उसका पूरा-का-पूरा प्रदर्शन किया जाय, तब तो प्रदर्शनी बहुत ही लम्बी-चौड़ी हो जायगी और उससे केवल आश्चर्य का भास होता रहेगा। इसलिए लोग अच्छी तरह से कुछ सीख सकें, तभी प्रदर्शनी लाभदायक सिद्ध होती है। वैसी योजना आपने यहाँ की है।

मैं प्रदर्शन का अच्छी तरह से सूक्ष्म अध्यन नहीं कर सका हूँ। अन्यथा कोई कमी कैसे पूरी की जाती है, इस सम्बन्ध में भी आपको कुछ सुझाना चाहता था। जैसे जयपुर कांग्रेस अधिवेशन में प्रदर्शनी की पुस्तक प्रकाशित की गयी थी, वैसी ही पुस्तक यहाँ भी प्रकाशित की जाती तो भी कुछ सुझाव देने में आसानी होती। ● ● ●

अनुक्रम

१. अहिंसा की शक्ति से ही दुनिया टिक सकेगी
जामनगर २७ नवम्बर '५८ पृ० २८९
२. भंगी-काम की समस्याएँ और उनका हल
मोरली ४ दिसम्बर '५८ ,, २९१
३. राष्ट्र की उन्नति के लिए सामाजिक चेतना को जागृत करें
फतेहपुर १८ मार्च '५९ ,, २९१
४. सफाई और प्रदर्शनी का शास्त्र समझकर काम करें !
सर्वोदय-नगर २ मार्च '५९ ,, २९६

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५
तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।